शिक्षक हों तो

गिजुभाई बधेका*

*शिक्षा के यथार्थ को भेदने में सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् गिजुभाई का कोई सानी नहीं। वे अध्यापक की लाचारी को जानते थे और व्यवस्था की क्रूरता को छिपाने की उन्हें ज़रूरत न थी स्कूल की मरुभूमि में बच्चे की यातना उनसे न देखी गई और यही विवशता उनके शैक्षिक प्रयासों और लेखन का स्त्रोत बनी। गिजुभाई ने शिक्षा संबंधी अनेक किताबें लिखी हैं, जिनका हिंदी अनुवाद भी नहीं हुआ है। इन्हीं में से एक किताब है- 'शिक्षक हों तो।' यह पुस्तक मोंटेसरी बाल शिक्षण समिति राजलदेसर (चूरू) से प्रकाशित है। इस किताब का मूल्य तीस रुपये है। पुस्तक **'शिक्षक हों तो'** से कुछ लेख नीचे दिए जा रहे हैं।*

गणित

गणित के शिक्षण की सार्थकता सवाल हल कर पाने में नहीं अपितु बुद्धि के विकास में निहित है। बच्चे एक, दो, तीन, चार आदि संख्याएँ सही-सही गिन लें, माँगने पर माँग के परिणाम में बराबर गिनती करके चीजें-वस्तुएँ ला दें, फिर भी जब कभी वह संसार के परिचय में आए और आते ही यदि उसमें अपने आप गिनती करने का प्रश्न न उठे, जैसे हाथों की उंगलियाँ देख कर कि 'ये उंगलियाँ कितनी हैं?', 'मेरे कोट के बटन कितने होंगे?', 'खिड़की की ये सलाखें कितनी होंगी?' ऐसी जिज्ञासा न जागे, भले ही उसे गिनती करना आता होगा पर उसकी गणित-बुद्धि का विकास नहीं हुआ है, यही कहा जाएगा।

अगर कोई बच्चा सही ढंग से भाषा विकास की दिशा में बढ़ा है तो वह मात्र पाठ्यपुस्तक पढ़ कर ही बैठा नहीं रह जाएगा। भाषा के द्वारा वह ज्ञानार्जन करता ही जाएगा। भाषा को वह माध्यम बना लेगा। मात्र बारहखड़ी ही उसने सीखी होगी तो सड़क के साइनबोर्ड और अखबार के बड़े-बड़े अक्षरों को पढ़ने में अत्यंत उत्साह प्रदर्शित करेगा। यही बात गणित में होनी चाहिए। सुबह से लेकर शाम तक बच्चे के सामने व्यवहार में हिसाब के कितने ही विषय आते हैं। अगर

* पुस्तक *शिक्षक हों तो* से साभार

उन पर सचमुच नज़र पड़े तो बच्चे के मन में गणित के प्रश्न उभरने चाहिए। अगर गायों का झुंड जाता हो, तो कितनी गाएँ जा रही हैं? घर में बेर आए हों, तो वे कितने हैं? उनमें से इतने नहीं रहे तो कितने बचे? इतने बेर चार बच्चों में बाँटे जाएँगे तो सबों के हिस्से में कितने-कितने आएँगे? आदि-आदि प्रश्नों को वह छोड़ देता है। अगर यह नहीं होगा तो उस बच्चे की गणित बुद्धि जाग्रत नहीं हो पाएगी और उसकी हालत ठीक उस बच्चे जैसी हो जाएगी जिसकी रंग-दृष्टि का विकास नहीं हुआ। जब गणित-विवेक मात्र ही नहीं है, तो ऐसे प्रश्न हर्गिज़ नहीं उभर सकेंगे।

सामान्यतया गणित बुद्धि का विकास अर्थात् सामान्य समझ एवं शुद्ध कल्पना का विकास। एक बच्चे से पूछें कि, 'एक गाय के तीन पैर हैं तो सात गायों के कितने?' बच्चा कहेगा, 'इक्कीस।' यानि उसका हिसाब सही है, पर उसमें सामान्य समझ को लेकर अंधकार है। किसी बच्चे से पूछें, 'एक गधे के तीन कान....?' और बालक बीच ही में रुक कर बोल उठे, 'हो ही नहीं सकता।' तो इसे कहेंगे सामान्य समझ या सामान्य ज्ञान। एक बच्चे से पूछा, 'कोठी में गेहूँ कितने जाएँगे?' उसने कहा, 'अपरिमित। कई मापों जितना।' इस बच्चे ने प्रत्यक्ष ज्ञान से थोड़े से अधिक गेहूँ होने की कल्पना की है, ऐसा कहा जा सकता है। पढ़ने वाला भरोसा करके देख ले। दूसरे बच्चे से पूछा गया, 'रुपये के आने कितने ?' इस पर बच्चे ने जवाब दिया, 'सोलह'। उसके बाद फिर पूछा, ' इस प्याले में आने भर जाएँगे?' वह बोला, 'बीस।' जब कि प्याले में पचास आने आ सकते थे। यहाँ बच्चे को स्थूल से सूक्ष्म की तरफ ले जाने की कल्पना कर पाने की असमर्थता है।

छठी कक्षा के बच्चे को एक हिसाब लिखाया, 'एक आदमी रुपये भर नमक खाता है। दस वर्ष तक बराबर खाने के बाद वह मर गया तो मरने के दिन उसके पेट में कितना नमक होगा?' बच्चे के सामान्य ज्ञान और तर्क की जाँच के साथ उसके गणित-शिक्षण की भी कसौटी हो गई। बच्चे ने जवाब दिया, "अमुक नमक।" यह तोता रटंत थी। ऐसा इस कारण से होता है कि हम गणित के साथ व्यावहारिक एवं प्रत्यक्ष अनुभव को नहीं जोड़ते। बच्चों को गणित मौखिक या पट्टी पर सिखाया जाता है जबकि गणित बुद्धि के विकास के लिए शुरू से व्यवहार में तथा अनुभव के साथ सिखाना चाहिए।

गणित क्यों नहीं आई!

अंकगणित मुझे अच्छी नहीं लगती। मेहनत करके जितना कुछ सीखा था, वापिस भूल गया हूँ। जहाँ बहुत ज़रूरत थी, वहाँ भी गणित को सीखने के प्रति अनादर का भाव था। मुझे गणित की महत्ता बताने बिठा दो तो बहुत कम आँकूँ। मैं प्राथमिक शाला के पाठ्यक्रम में इसे बहुत हल्का स्थान देता हूँ।

एक बार दूसरी कक्षा में गणित की पढ़ाई चल रही थी। अध्यापक जी श्यामपट पर सवाल सिखा रहे थे। लड़के उनके सामने मुँह फाड़े देख रहे थे एक विद्यार्थी को झपकी आ गई

और अध्यापक जी ने उस पर चाक का प्रहार किया। मैं ही हूँ वह लड़का। क्या मुझे उस रोज़ वह सब अच्छा लगा होगा? कहीं गणित के प्रति मेरी अरुचि का, भले ही दूर का हो, पहला कारण वह सज़ा तो नहीं थी? आगे चलकर इस विषय में रुचि बढ़ाने के मार्ग में कहीं यही मूल मनोभाव विरोध का काम तो नहीं कर रहा था? खुद गणित पढ़ाने के खिलाफ मेरी शिक्षण संबंधी विचारधारा कहीं मेरे निजी कटु-अनुभव की परिणति तो नहीं थी?

मुझे तो यही लगता है। क्योंकि, गणित के प्रति किसी अन्य कारण से मुझे दुश्मनी नहीं। बीजगणित और रेखागणित मुझे बहुत प्रिय है। लेकिन शिक्षक ने भी मुझे अंकगणित विषय का द्वेष्टा बताया है।

हमारी वर्तमान रुचि/अरुचि, पक्ष-विपक्ष, पसंद-नापसंद के पीछे बचपन के कैसे-कैसे खट्टे-मीठे अनुभव विद्यमान रहते हैं, यह हमें खोजने की ज़रूरत नहीं है। आज हम जो हैं, उसकी जड़ें हमारे बाल्यकाल में हैं। हम बाल्यकाल में बंध जाते हैं।

बच्चों को कड़वे-मीठे अनुभव कराने से पहले यह सोचने की ज़रूरत है कि उसका कैसा पक्का असर जीवनपर्यंत स्थाई रह जाता है, और वह नुकसान कर बैठता है।

मैं पढ़ता था तब, और बचु पढ़ता है तब!

जब मैं पढ़ता था तब:

1. मास्टर जी मारेंगे या नंबर कट जाएँगे इस डर के मारे मैं बड़ी मुश्किल से जल्दी-जल्दी उठ कर उल्टे पैरों की तरफ भागता था।
2. मास्टर जी का ऐसा डर था कि मल-मूत्र की छुट्टी माँगने जाते, तो हम काँपने लगते थे।
3. मास्टर जी की ऐसी धाक थी कि सवेरे-शाम अगर हम गली में खेलते होते और पता लगता कि मास्टर जी आ रहे हैं तो छिप जाते थे। मास्टर जी को मुँह तक नहीं दिखाते थे। कहीं देख लेंगे तो कहेंगे, ''अरे ओ! इस तरह क्यों भटकते हो?'' अगले दिन कक्षा में हमसे किसी सवाल का उत्तर देते न बनेगा तो कहेंगे, ''कल गली में भटकते थे, क्यों?''
4. विद्यालय-प्राँगण में कबूतर और मोर दाने चुगने आते थे। हमारा मन करता था कि इन्हें जी भर कर देखें पर नक्शे से हट कर पल भर आँख उस तरफ जाती कि मास्टर जी कमर में घूँसा मार देते और कहते, ''उधर क्या देखते हो? इधर नक्शे में देखो, नक्शे में।''
5. कोई बारात निकलती और बाजे बजते तो उसे देखने को हमारे मन में जाने कैसी-कैसी लहरें उठती। लेकिन उधर मास्टरजी कक्षा में आँखें निकालते और गला फाड़कर चीखते हुए सवाल लिखवाते, 'लिखो ...दो रुपये का सवा सेर...'
6. गृहकार्य न आता तो मास्टर जी हमें धमकाते थे। पास बुलाकर कान मरोड़ते हुए कहते, ''कैसे नहीं आता?'' हम कहते, ''भाई सा'ब। आता नहीं!'' आगे वे कहते, ''क्यों नहीं आता?'' या फिर कहते, ''तू तो बस बारात में जा, फिर सवाल समझ में आ जाएगा''

7. मैं रोजाना सोचता कि कब रविवार आए और कब छुटटी मिले! शनिवार की शाम को लगता –उफ! चलो, एक, दिन के लिए तो छूटे! मास्टरजी को और शाला को हम भूल जाते थे कि बस! बाकी दिनों में जब सुबह–शाम छूटते तो दौड़ते हुए शाला से भागते, मानो पिंजरे से शेर–चीते छूटे हों।
8. मास्टर जी के शाला में आते ही हम भीगी बिल्ली या गरीब गाय जैसे बन जाते। मास्टर जी के बाहर जाते ही हम ज़ोर–ज़ोर से शोर करने लग जाते।
9. मास्टर जी के सामने तो हम 'जी हाँ, जी हाँ' करते, उनका हुकम दौड़–दौड़ कर उठाते, पर मास्टर जी के पीठ पीछे हम उनकी नकलें उतारते और लिखने का काम कराने को लेकर उन्हें गालियाँ निकालते।
10. मास्टर जी खूँटी पर अपनी पगड़ी को टाँगते और कुर्सी के सहारे टेबल पर टाँगे पसार कर बैठते। फिर बोलते, 'गृहकार्य दिखाओ।' या फिर मॉनीटर से बोलते: इन सबके गृहकार्य इकट्टा कर ले।'

जब मैं पढ़ता था तब ऐसी पढ़ाई होती थी। उस बात को बीते चालीस बरस हो गए।

अब जब बचु पढ़ता है तब :

1. वह अपने आप सुबह जल्दी उठता है या हमसे जल्दी उठाने को कह देता है। इस कारण से वह जल्दी–जल्दी शाला में दौड़ता हुआ पहुँचता है कि मैं कब अपने अध्यापक जी से जाकर बातें करूँ, शाला प्रांगण में जाकर फूलों को सूँघु, पत्तियों को पकडूँ, शाला में संगीत सुनूँ और मजे करूँ।
2. बचु घर आकर कहता है, ''शाला में अगर हमें मल–मूत्र के लिए जाना होता है, तो हम वहीं जा सकते हैं। वहाँ हमारे लिए इसका अलग से अच्छा इंतजाम है। जाने से कोई भी मना नहीं करता। पेशाब घर भी अलग है। मास्टर जी ने वे जगहें हमें समझा दी हैं।
3. बचु के शिक्षक अगर उसे गली में मिल जाते हैं तो वह दौड़ कर नमस्कार करता है। कहता है, ''मास्टर जी! नमस्ते।'' बचु उन्हें घर बुला लाता है। कहता है, ''हमारे..... मास्टरजी आए है।'' वह उन्हें जल पिलाता है, उनके पास बैठता है, उन्हें अपनी चीजें दिखाता है।
4. बचु कहता है, ''ये मेरे...मास्टर लोग अच्छे हैं। रोज हमें मैदाने में खेलाते हैं। मोर और कबूतरों आदि को चुगते हुए देखने से हमें कभी मना नहीं करते। जब हम देखते–देखते थक जाते हैं तो अपने आप पढ़ने–लिखने बैठ जाते हैं।''
5. बचु कल अपनी माँ से कहता था, '' '' माँ! जब बारात उधर से निकली तो मास्टर जी कहने लगे, ''अब ज़रा सवाल करना बंद कर दो। बारात को देख लो। कैसे बाजे बज रहे हैं। फिर बाद में बेफ्रिकी से सवाल हल करना।''
6. बचु की शाला में घर से गृहकार्य करने का रिवाज़ नहीं है। शाला में जो कुछ पढ़ता या लिखता है, वही पढ़ाई है। मास्टर जी कहते हैं, ''घर पर तो खेलो, खाओ, घूमो–फिरो।

इच्छा हो तो पढ़ो, लिखो, चित्र बनाओ। पर गृहकार्य की ज़रूरत नहीं।'' उसकी शाला का कोई भी अध्यापक गृहकार्य करने को नहीं देता।

7. बचु रोज शाम को देरी से आता है जब हम उससे पूछते हैं कि, 'भाई, देरी कैसे हुई?' तो वह जवाब देता, ''विद्यालय में खेल खेल रहे थे'' मास्टर जी मिलते हैं तो कहते हैं, ''इस बच्चे को तो विद्यालय से जबरदस्ती धकेल कर घर भेजना पड़ता है। विद्यालय में रहना इसे बहुत अच्छा लगता है।'' जहाँ बच्चे-बच्चे मिलकर साथ खेलें, और इच्छा हो तब तक पढ़ें और फिर लौट आएँ, तो भला ऐसा विद्यालय किसे अच्छा नहीं लगेगा? वहाँ से घर कौन आए।
8. बचु की शाला में शिक्षक हों तब भी ऐसा ही चलता है और न हों तब भी यही चलता है। वहाँ ऐसा नहीं है कि मास्टर को देखते ही कोई डर जाए और थरथर काँपने लगे या मास्टर कक्षा से जाएँ तो लड़के खुशी मनाएँ या टेबिलें फटकारें। बच्चे पहले से ही जो काम करते हैं वही चलता रहता है। रोज़ाना जैसा होता है वही होता रहता है।
9. मैंने अपनी नज़रों से देखा है कि बचु अपने मास्टरजी का काम दौड़ कर करता है। अगर उसे अच्छा नहीं लगता तो मना कर देता है। मना करेगा तो मास्टरजी नाराज़ होंगे, ऐसा भाव उसके मन में नहीं है। वह तो जिस प्रकार से माँ का काम करता है उसी प्रकार से मास्टरजी का काम करता है। वह कहता, ''जब मास्टर जी बोलते हैं, तब उनका मुँह यों-यों करता है '' इसी तरह से वह कहता है, '' मेरी माँ जब बोलती हैं तब उनकी नाक इस तरह हिलती है।'' और 'जब मेरी काकी चलती है तो तब उसकी कमर यूँ-यूँ बल खाती है।' बचु की अवलोकन करने की आदत है वह सबों के लक्षण गिनाता है। यह उसकी व हमारी निर्दोष क्रीड़ा है। इसमें किसी की नकल या उपहास का भाव नहीं है। बचु के मन में ऐसा कुछ तो नहीं।
10. बचु के मास्टरजी के लिए कक्षा में टेबल-कुर्सी तक नहीं है। मास्टर जी खड़े रहते हैं और देखते रहते हैं कि बच्चे क्या पढ़ते हैं, क्या लिखते हैं। वे सभी का काम देखते जाते हैं और कुछ कहना हो तो कहते जाते हैं। बच्चे उनके पास आकर समझ में न आने वाली बातें पूछते हैं और मास्टरजी उन्हें बताते रहते हैं। उन्हें साँस लेने की भी फुर्सत नहीं मिलती।

यह है पुरानी शाला का मेरा अनुभव और नयी शाला का बचु का अनुभव। पुराने ज़माने से इस ज़माने तक आते-आते इतना बड़ा फ़र्क पड़ गया है।

कैसी कहानियाँ न कहें

कहानियों को शिक्षण में तथा बच्चों के जीवन में अहम स्थान मिल चुका है। चारों तरफ कहानी, कहानी और कहानी की पुकार मचने लगी है, यह अच्छी बात है। लेकिन बच्चों को कैसी कहानी कही जाए और कैसी न कही जाए, यह

फर्क अनेक लोग करना अक्सर भूल जाते हैं और कहानी कहने वाले लोग बच्चों को हर तरह की कहानियाँ सुनाने लग जाते हैं। इसलिए इस संबंध में कुछ बातें स्पष्ट कर लेनी ज़रूरी हैं।

कहानियों में हमारे वर्तमान आदर्श जीवन के विरुद्ध कहीं कुछ नहीं होना चाहिए। 'एक बार ऐसा हुआ था'- ऐसी कथन शैली अच्छी नहीं होती। अगर बच्चों को सभी कुछ बताए बिना यूँ ही काम चल सकता हो, तो उन्हें बताने की आवश्यकता ही नहीं है। जो बातें हमें बहुत सीधी-सादी और सुस्पष्ट लगती हैं, वे बच्चों के मन में अनेक प्रकार की उलझनें पैदा कर देती हैं। अतएव ऐसी तमाम बातें त्याज्य समझनी चाहिए।

'एक राजा था।' यह कहने के बाद 'उसकी सात रानियाँ थी' यह बात कहनी जरूरी नहीं है। सात रानियों से विवाह करने का आदर्श आज नहीं है। बहुविवाह तो आज निंदनीय समझा जाता है। हाँ, अगर सात रानियों से विवाह करने से भयंकर परिणाम बताने संबंधी कहानी हो, तो ऐसी कहानी चलेगी, लेकिन अमुक रानी राजा की प्रिय थी, और अमुक अप्रिय थी, उनसे संबंधित द्वेष-बैर की बातें बच्चों के दिलों में ज़हर ही भरती हैं। ऐसा करके बच्चों को शुद्ध दुनिया की कल्पना कराने के बजाय हम उनके मलिन मनों के दर्शन कराते हैं और इस प्रकार समय-असमय, भूल-चूक से ऐसे मार्ग पर जाने की ओर इंगित कर भी देते हैं।

याद रखने की बात है कि शब्द बड़ा बलवान होता है। बच्चों के दिलों पर उसकी छाप अंकित रहती है। अगर शब्द का अर्थ बच्चे न भी समझें, तब भी शब्द उनके दिलों को छूता अवश्य है। कदाचित उनके सामने कोई प्रतिकूल परिस्थिति आ जाए और ऐसी दुष्टता पूर्ण भावनाएँ जाग्रत हो जाएँ तो कितना जबर्दस्त नुकसान हो सकता है। जानबूझ कर देखते हुए भी जिस स्थान पर हमको दाड़िम, पपीता, मौसमी, संतरा और आम का पौधा लगाना हो, वहाँ साथ-साथ अफीम के बीज नहीं छिड़कने चाहिए। बच्चों की ऐसी उम्र को देखते हुए तो हमें हर्गिज़ ऐसे बीज नहीं बोने चाहिए कि बच्चे न तो उन्हें पचा सकें, न ही उन्हें हँस कर टाल सकें अथवा उनका दृष्टिकोण समझ सकें। इसी भाँति की जो कहानियाँ परंपरा से चली आ रही हैं, हमारे वहमों को पोषित करती हों अथवा जो भूत-प्रेतों और उनके असर में हमारा विश्वास पुष्ट करती हों, वे हर्गिज नहीं कहनी चाहिए। बल्कि कहानियाँ ऐसी होनी चाहिए कि उल्टे जिनसे इन तमाम बातों का उपहास हो, जिनसे इनकी पोल खुलती हो और सच्चाई सामने आती हो। ऐसी कहानियों को बड़े ही प्रभावकारी ढंग से कुशलतापूर्वक कहना चाहिए। दंगेबाजी, चालाकी, धूर्तता, दुष्टता की जीत और जादुई सच्चाइयों की कहानियाँ भी नहीं कहनी चाहिए। कहानी कहने वाले को सिर्फ कहानी कहने का शौकीन ही नहीं होना चाहिए बल्कि कहानी की शिक्षा या उसके संदेश का भी ज्ञान होना ज़रूरी है।

आज बाल-साहित्य के नाम पर जितनी भी कहानियाँ छपती हैं, सामने आती हैं, या हमारे द्वारा भीतर ही भीतर कही जाती हैं, वे सब की सब कहने योग्य नहीं होती। साहित्यकार की नज़र

शिक्षाविद् की नज़र से भिन्न नहीं होनी चाहिए, फिर भी कहीं-कहीं उनमें अंतर आना संभव है और आज तो यह बात बहुत संभव है। कारण यह है कि साहित्य और शिक्षा के ये दोनों क्षेत्र अभी इतने शुद्ध और निर्मल नहीं बन पाए हैं। इस वजह से शिक्षा की दृष्टि से जो कहानियाँ अच्छी प्रतीत होती हों, सिर्फ वही बच्चों को कही जानी चाहिए। कहानी कहने वाला व्यक्ति भी सिर्फ कहने-सुनाने का सीरी नहीं है, अपितु वह बाल-जीवन का, बाल-शिक्षण का दृष्टा भी होता है। एक कहानी-शिक्षक सदैव सोच-समझ कर सावधानी से अपनी कहानी पसंद करता है।